



INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय सहयोगी और प्रतिस्पर्धी संघवादः आलोचनात्मक संश्लेषण

डॉ. प्रकाश वीर दहिया

सह आचार्य

राजनीति विज्ञान विभाग

सत्यवती महाविद्यालय (सांध्य)

दिल्ली विश्वविद्यालय

नई दिल्ली, भारत

सार

भारतीय संघवाद को प्रायः एक केंद्रीकृत संघ या अर्ध-संघीय संघ के रूप में चित्रित किया जाता है, परन्तु ऐसी स्थिर श्रेणियाँ इसकी संवैधानिक गतिशीलता को छुपा देती हैं, जो सहयोग और प्रतिस्पर्धा की अंतःक्रिया के रूप में संविधान में निहित है। यह शोधपत्र यह सिद्ध करता है कि भारतीय संघ को सहयोग और प्रतिस्पर्धा के बीच किसी चुनाव से नहीं, अपितु उनके परस्पर अंतर्संबंध से बाँधा गया है। संघवाद के सिद्धान्त, संविधान सभा के वाद-विवाद, विधायी, प्रशासनिक और राजकोषीय संबंधों की संवैधानिक स्थिति, ऐतिहासिक न्यायिक निर्णयों तथा विभिन्न आयोगों की रिपोर्टों का विश्लेषण प्रदर्शित करता है कि सहयोगी संघवाद ने ऐतिहासिक रूप से वितरण और राष्ट्रीय एकीकरण के लिए प्रामाणिक तथा संस्थागत ढाँचा प्रदान किया है, जबकि प्रतिस्पर्धी संघवाद क्षेत्रीय जवाबदेही और नीति की गतिशीलता के रूप में उभरा है। यह शोधपत्र जवाहरलाल नेहरू के योजनाबद्ध सहयोग से लेकर नरेंद्र मोदी के नीति आयोग के माध्यम से 'प्रतिस्पर्धी सहयोगी संघवाद' तक के ऐतिहासिक विकास का आलोचनात्मक परीक्षण करता है। यह दोनों प्रणालियों के संयोजन की आवश्यकता, क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर प्रतिस्पर्धा और सहयोग, भारत की राजनीतिक, न्यायिक और आर्थिक प्रणालियों पर पड़ने वाले प्रभाव, आदि का अध्ययन प्रस्तुत करता है। निष्कर्षतः यह पत्र स्थापित करता है कि भारतीय संघवाद एक निरंतर अनुकूलनीय राजनीतिक तकनीक है।

मुख्य शब्दः केन्द्रीकृत संघ, अर्ध-संघीय संघ, संविधान सभा, नीति आयोग, अंबेडकर

परिचय

भारतीय संघवाद भारतीय संविधान का एक मूल ढाँचा है, जो देश की विविधता को एकता के सूत्र में बांधता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 में भारत को "राज्यों का संघ" कहा गया है। भारतीय संघवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अमेरिकी संघवाद की तरह राज्यों के बीच किसी समझौते का परिणाम नहीं है, और न ही किसी राज्य को संघ से अलग होने का अधिकार है। भारत का ढाँचा पूरी तरह संघीय नहीं बल्कि "अर्ध-संघीय" है। केंद्र स्तर पर राष्ट्रीय सरकार और राज्य स्तर पर क्षेत्रीय सरकारें काम करती हैं। सातवीं अनुसूची में तीन सूचियों (संघ, राज्य और समवर्ती सूची) के माध्यम से शक्तियों का स्पष्ट बंटवारा है। सामान्य समय में यह संघीय रूप में काम करता है, लेकिन आपातकाल के समय यह एकात्मक रूप में काम करता है। केंद्र और राज्यों के बीच किसी भी विवाद को सुलझाने के लिए एक स्वतंत्र न्यायपालिका मौजूद है। भारतीय संघ का झुकाव केंद्र की तरफ है। भारत को अखंड रखने के लिए केंद्र सरकार को अधिक शक्तियाँ दी गई हैं।

भारत का संघीय विरोधाभास और संवैधानिक उपाय

राजनीतिक संरचना या व्यवस्था में संघवाद एकता और विविधता में सामंजस्य स्थापित करने की आकांक्षा से उत्पन्न होता है, ताकि एक मिश्रित राजव्यवस्था अपने विभिन्न घटकों या अंगों के स्वायत्त अस्तित्व को एक साथ जोड़कर रखते हुए अपना कार्य कर सके। 'द फेडरलिस्ट'ⁱ से लेकर के.सी. व्हेयरⁱⁱ तक का संघवादी सिद्धांत इसे सरकार के दो स्तरों के बीच संप्रभुता का विभाजन मानता है, जिनमें से प्रत्येक अपने क्षेत्र या प्राधिकार में सर्वोच्च हो।ⁱⁱⁱ तथापि भारत की संविधान सभा ने 'संघ' (फेडरेशन) शब्द को ही अस्वीकार कर दिया और 'राज्यों का संघ' (यूनियन ऑफ स्टेट्स) शब्द अपनाया, जो बी.आर. अंबेडकर के शब्दों में, 'समय और परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार एकात्मक भी था और संघीय भी'।^{iv} इस सोची-समझी अस्पष्टता ने एक ऐसी संवैधानिक व्यवस्था को जन्म दिया जिसमें सहयोग और प्रतिस्पर्धा केवल सह-अस्तित्व में ही नहीं हैं, अपितु वे केंद्र-राज्य संबंधों का सह-उत्पादन भी करते हैं।^v

भारतीय शब्दावली में सहयोगी संघवाद (कोऑपरेटिव फेडरलिज्म) परंपरागत रूप से संघ और राज्यों के बीच प्रशासनिक और राजकोषीय भागीदारी को इंगित करता है, जिसे वित्त आयोग, अंतर-राज्य परिषद् और योजना तंत्र के माध्यम से संस्थागत रूप प्रदान किया गया है।^{vi} इसके विपरीत प्रतिस्पर्धी संघवाद (कंपेटिटिव फेडरलिज्म) अपेक्षाकृत नया शब्द है, जो 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद प्रचलन में आया और 2015 के बाद नीति आयोग द्वारा स्पष्ट रूप से प्रोत्साहित किया गया। यह निवेश, मानव पूंजी और प्रदर्शन-आधारित राजकोषीय हस्तांतरण की 'अंतःराष्ट्रीय' प्रतिस्पर्धा को संदर्भित करता है।^{vii} विश्लेषणात्मक चूक या कमी इन दोनों प्रणालियों को अलग-अलग या अनुक्रमिक मानने से पैदा होती है। यह शोधपत्र तर्क देता है कि ये दोनों वास्तव में परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर हैं, क्योंकि बिना प्रतिस्पर्धा के सहयोग केंद्रीकृत निरंकुशता का जोखिम पैदा करता है, जबकि बिना सहयोग के प्रतिस्पर्धा राष्ट्रीय व्यवस्था को खंडित कर सकती है और राजकोषीय सम्बन्धों को विघटित कर सकती है।^{viii} भारत की व्यवस्था ऐसी है कि संघ सहयोग को अधिक प्रभावी बनाने के लिए प्रतिस्पर्धा का उपयोग कर सकता है और प्रतिस्पर्धा को सतत बनाने के लिए सहयोग का प्रयोग कर सकता है।^{ix}

संघवाद का तुलनात्मक वर्गीकरण

संघवाद का राजनीतिक दर्शन विभाजित संप्रभुता के प्रश्न से प्रारंभ होता है।^x इसके सम्बन्ध में कई दार्शनिक सिद्धान्त और अवधारणाएँ हैं, परन्तु भारतीय संघवाद किसी भी आदर्श प्रारूप में फिट नहीं बैठता। इसका एक अद्वितीय प्रारूप है, जिसमें संवैधानिक केंद्र के पास अत्यधिक विधायी और आपातकालीन शक्तियाँ होती हैं, जिसे अल्फ्रेड स्टेपन ने 'राज्य-राष्ट्र' मॉडल कहा है और इसमें एक राजनीतिक अर्थव्यवस्था निर्मित होती है, जो राज्य-स्तरीय उद्यमशीलता पर निर्भर करती है।^{xi} इस द्वैत को समझने के लिए भारत के संविधान-निर्माण की प्रक्रिया पर विचार करना आवश्यक है।

भारत की संविधान सभा ने विभाजन की कालिमा और 565 देशी राज्यों या रियासतों के एकीकरण की अनिवार्यता के बीच संघवाद पर विचार-विमर्श किया।^{xii} जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता वाली संघ शक्ति समिति ने प्रारंभ में एक कमजोर केंद्र का प्रस्ताव रखा था, लेकिन 1947 तक आते-आते विभाजन की विभीषिका ने संविधान सभा की मानसिकता को सशक्त केंद्रीय सत्ता की ओर मोड़ दिया।^{xiii} संविधान सभा की संघ संविधान समिति ने 'संघ' (फेडरेशन) शब्द को स्पष्ट रूप से नकार दिया, क्योंकि इसके अध्यक्ष के शब्दों में, इसका तात्पर्य 'स्वतंत्र राज्यों के बीच एक संधि या समझौता' था। इसके बजाय, संविधान ने 'राज्यों का संघ' स्थापित किया, जिसमें किसी राज्य को पृथक् होने का अधिकार नहीं था और जिसकी सीमाओं को संसद द्वारा एकपक्षीय रूप से बदला जा सकता था (अनुच्छेद 3)।^{xiv}

तथापि संघीय प्रवृत्ति समाप्त नहीं हुई। संविधान सभा के वाद-विवाद का सावधानीपूर्वक अध्ययन एक परिष्कृत समझौते को प्रकट करता है। संघ की प्रकृति पर डॉ. बी. आर. अंबेडकर के हस्तक्षेप महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने दोहरी राज्य-व्यवस्था (सामान्य समय में संघीय) और आपातकाल में एकात्मक राज्य के बीच अंतर करते हुए कहा कि संविधान 'एकात्मक भी है और संघीय भी' अर्थात् भारत का संविधान समय और परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार एकात्मक और संघीय दोनों हो सकता है।^{xv} यह व्यावहारिक दृष्टिकोण संवैधानिक सलाहकार बी. एन. राव द्वारा भी अपनाया गया, जिन्होंने ऑस्ट्रेलिया और कनाडा मॉडलों का सहारा लेते हुए शक्तियों के वितरण को परिभाषित किया। शक्तियों का यह वितरण सार्थक मात्रा में संघ-सूची (रक्षा, विदेश मामले, मुद्रा और अंतर्राज्यीय

व्यापार को सम्मिलित करते हुए) की ओर झुका हुआ था, जबकि राज्यों के लिए कानून-व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि और स्थानीय शासन सुरक्षित था। समवर्ती सूची के रूप में उभयनिष्ठ विषयों के समुच्चय की कल्पना करना संविधान सभा का एक चतुर कदम था। इन विषयों पर केन्द्र और राज्य दोनों कानून बना सकते हैं, परन्तु संघीय कानून प्रबल रहता है। यह उपाय सहयोगपूर्ण संवाद और भविष्य के केंद्रीय अतिक्रमण के लिए संस्थागत उपाय बना।^{xvi}

भारत के संविधान की राजकोषीय व्यवस्था का निर्माण भी उतना ही आकर्षक था। संविधान सभा ने द्वैत संघवाद की एक प्रमुख विशेषता 'कर-शक्तियों के पृथक्करण' को अस्वीकार कर दिया। इसके स्थान पर, इसने एक एकीकृत कर प्रणाली बनाई, जिसमें केंद्र द्वारा एकत्रित राजस्व के ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज वितरण की मध्यस्थता के लिए एक सशक्त वित्त आयोग (अनुच्छेद 280) का प्रावधान था। यह राजकोषीय सहयोग का 'भ्रूण' था।^{xvii} साथ ही, अनुच्छेद 282 (संघ या राज्य द्वारा अपने राजस्व से किए जाने वाले व्यय) का समावेश और राज्य द्वारा ली जाने वाली उधारी को नियंत्रित करने के लिए अनुच्छेद 293(3) के व्यावहारिक उपयोग के प्रावधान ने उस प्रतिस्पर्धी गतिशीलता का बीज बोया, जो बाद में केंद्र को नीतिगत प्रदर्शन के आधार पर संसाधन हस्तांतरण की शर्त लागू करने की अनुमति देता है।^{xviii} संविधान सभा ने अंतर-राज्य परिषद् (अनुच्छेद 263) के माध्यम से अंतर-राज्यीय सहयोग और अधिकरणों द्वारा नदी जल-विवादों के समाधान का भी प्रावधान किया।^{xix}

संवैधानिक प्रावधान, न्यायिक व्याख्या और आयोगों की अनुशंसा

भारत का संविधान तीन विधायी सूचियों (अनुच्छेद 245-255) के माध्यम से विधायी शक्ति वितरित करता है। 97 विषयों की संघ सूची, 66 विषयों की राज्य सूची और 47 विषयों की समवर्ती सूची मूलतः एक संरचनात्मक विषमता उत्पन्न करती है, जो समय के साथ तब और बढ़ गई जब संवैधानिक संशोधनों ने शिक्षा, वन और वन्यजीव जैसे विषयों को राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरित कर दिया। यह विधायी ढाँचा एक प्रशासनिक फ्रेमवर्क पर आधारित है, जो सहयोग के लिए तो अभिकल्पित है, परन्तु उसका झुकाव केंद्र की ओर है।^{xx} अनुच्छेद 256 राज्य को उसकी कार्यपालिका शक्ति का संघीय कानूनों के अनुपालन में प्रयोग करने के लिए बाध्य करता है और अनुच्छेद 257 संघ को निर्दिष्ट मामलों पर राज्यों को निर्देश देने की शक्ति देता है, जिनमें राष्ट्रीय या सैन्य महत्त्व के संचार साधनों का निर्माण और रखरखाव शामिल है। हालाँकि, अनुच्छेद 258 कार्यपालिका कार्यों के पारस्परिक प्रत्यायोजन की अनुमति देता है, जो केंद्र प्रायोजित योजनाओं के समवर्ती कार्यान्वयन की विशेषता है।

राजकोषीय संबंध, सहयोगी और प्रतिस्पर्धी तर्कों के गहरे अंतर्वेधन को प्रकट करते हैं। संविधान प्रत्येक पाँच वर्ष में एक वित्त आयोग की स्थापना का प्रावधान करता है, जो संघ और राज्यों के बीच तथा स्वयं राज्यों के बीच विभाज्य करों की शुद्ध आय के वितरण की सिफारिश करता है (अनुच्छेद 280)। यह संस्था ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज सहयोग का उदाहरण है, तथापि इसकी शर्तों में राजकोषीय अनुशासन और जनसांख्यिकीय प्रदर्शन के संकेतक शामिल किए जाते हैं, जो राज्यों के प्रतिस्पर्धी व्यवहार को पुरस्कृत करते हैं। 101वें संविधान संशोधन के माध्यम से प्रवर्तित वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) व्यवस्था ने सहयोगी राजकोषीय निर्णय के एक संस्थागत मंच के रूप में जीएसटी परिषद् की स्थापना की, जिसमें संघ और राज्यों दोनों का प्रतिनिधित्व है और उसके निर्णयों के लिए 75% बहुमत आवश्यक है। परिषद् का कामकाज सम्मिलित स्वायत्तता के सर्वोच्च स्वरूप का उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह तीव्र मोलभाव का भी मंच है, जहाँ राज्य उस दर-युक्तिकरण या का विरोध करते हैं जो उनके राजस्व को खतरे में डालता है। परिषद् की यह भूमिका सहयोगी तंत्र के भीतर प्रतिस्पर्धी तनाव को उजागर करता है।^{xxi}

भारत में न्यायपालिका संघीय त्रिकोण को पूरा करती है। उच्चतम न्यायालय ने, शक्तियों के संघीय विभाजन के अंतिम मध्यस्थ के रूप में एक सिद्धांत विकसित किया है, जो संघवाद को संविधान के मूल ढाँचे का हिस्सा मानता है (एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ, 1994)^{xxii}। बोम्मई मामले में 9 न्यायाधीशों की पीठ ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा न्यायिक पुनर्विलोकन के योग्य है और वह शक्ति निरपेक्ष नहीं है। इस निर्णय ने मूलतः संतुलन को बाध्यकारी तौर पर एकपक्षीय केंद्रीय प्रभुत्व से सहयोगी व्यवस्था की ओर खिसका दिया।^{xxiii} इससे पूर्व, राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ (1977) में न्यायालय ने घोषित किया था कि अनुच्छेद 356 के तहत केंद्र की निर्देशात्मक शक्ति भारतीय संघ को एकात्मक राज्य में परिवर्तित नहीं करती। अनुच्छेद 301 के अधीन अंतरराज्यीय व्यापार और वाणिज्य पर न्यायालय ने भेदभावपूर्ण राज्य करों को अमान्य ठहराया, जिससे

साझा राष्ट्रीय बाजार सुदृढ़ हुआ तथा राज्यों को व्यावसायिक वातावरण के गैर-शुल्क आयामों पर प्रतिस्पर्धा करने के लिए प्रोत्साहित किया गया (जिंदल स्टेनलेस बनाम हरियाणा राज्य, 2006)।^{xxiv}

भारतीय संघवाद के प्रक्षेप-पथ को उन प्रमुख आयोगों के बिना नहीं समझा जा सकता, जिन्होंने केंद्र-राज्य संबंधों पर विचार किया। प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-70) ने बेहतर केंद्र-राज्य समन्वय के लिए तंत्रों की सिफारिश की तथा समवर्ती कानूनों के बारे में व्यवस्थित परामर्श की आवश्यकता पर बल दिया। इसकी रिपोर्टों ने अंतर-राज्य परिषद् सचिवालय की नींव रखी। सरकारिया आयोग (1983-88) संघीय संतुलन के पुनर्मूल्यांकन का सर्वाधिक व्यापक प्रयास था। इसने 247 सिफारिशें प्रस्तुत कीं, जिनमें उल्लेखनीय रूप से अनुच्छेद 356 के प्रयोग में संयम बरतना, अंतर-राज्य परिषद् को सक्रिय बनाना तथा राज्यों के हितों को प्रभावित करने वाले समवर्ती कानूनों पर उनसे अनिवार्य परामर्श का आग्रह था। यद्यपि आयोग का मूल दर्शन सहयोगी संघवाद था, इसलिए इसने राज्यों को विधायी शक्तियों के बड़े हस्तांतरण की माँग को अस्वीकार कर दिया, फिर भी इसने केंद्र की एकपक्षीय प्रवृत्तियों पर अनुशासन लगाने का प्रयास किया, ताकि उस स्थान की रक्षा हो सके जिसमें प्रतिस्पर्धी राज्य की राजनीति बिना अस्तित्वगत खतरे के पनप सके। पूंछी आयोग (2007-2010) और आगे गया, इसने राष्ट्रपति शासन के दुरुपयोग को रोकने के लिए अनुच्छेद 355 और 356 में संशोधन की सिफारिश की और यह प्रस्ताव रखा कि अंतर-राज्य परिषद् को स्थायी और अधिक शक्तिशाली निकाय बनाया जाए। यह आम संस्थागत सहमति विकसित हो चुकी है कि भारतीय संघवाद तब सर्वोत्तम काम करता है, जब सहयोगी तंत्र मजबूती से संरक्षित हों और प्रतिस्पर्धी गतिशीलता को आपसी संघर्ष के बजाय विकासात्मक परिणामों की ओर मोड़ दिया जाए।^{xxv}

योजनाबद्ध सहयोग से लेकर बाजार-संचालित प्रतिस्पर्धा तक

भारतीय संघवाद के इतिहास को केंद्र-राज्य अंतःक्रिया की प्रभावी विधा के आधार पर देखा जा सकता है।^{xxvi} नेहरू युग (1950-1964) ने 'पदानुक्रमित सहयोगी संघवाद' का एक मॉडल स्थापित किया। योजना आयोग, जो एक गैर-संवैधानिक निकाय था, ऊपर-से-नीचे की ओर उन्मुख परामर्श के माध्यम से आवंटन निर्धारित करता था।^{xxvii} उस समय केंद्र और राज्यों में कांग्रेस का एक साथ प्रभुत्व होने के कारण संघ शक्ति के केंद्रीकरण के लिए 'सहयोगी' शब्दावली का उपयोग कर सका, जबकि अनौपचारिक रूप से कामराज और बी.सी. रॉय जैसे राज्य-स्तरीय सत्ता-केंद्रों को स्थान दिया गया।^{xxviii} इंदिरा गांधी के काल (1966-1977, 1980-1984) में केंद्रीकृत एकपक्षीयता का चरम देखा गया, जिसमें अनुच्छेद 356 का बारंबार प्रयोग, अकेले 1970 के दशक के दौरान 30 से अधिक अवसरों पर राष्ट्रपति शासन लागू करना और सहयोगी संस्थाओं का सोचा-समझा राजनीतिकरण शामिल था।^{xxix} इस अवधि में प्रतिस्पर्धी संघवाद मुख्यतः तमिलनाडु, पंजाब और आंध्र प्रदेश के लिए अधिक स्वायत्तता की माँग करने वाले क्षेत्रीय दलों के उदय के माध्यम से व्यक्त हुआ।^{xxx}

1991 के उदारीकरण ने प्रोत्साहन की संरचना को मूलतः बदल दिया। लाइसेंस-परमिट राज के उन्मूलन के साथ, निवेश का प्रवाह बाजार-संचालित बन गया और बेहतर अवसंरचना और शासन वाले राज्यों ने अपेक्षाकृत अधिक पूंजी आकर्षित करना आरंभ कर दिया। गुजरात, महाराष्ट्र और दक्षिणी राज्यों में 'शीर्ष स्थान की ओर दौड़' की भवन ने प्रतिस्पर्धी संघवाद के सिद्धांत को अनुभवजन्य अर्थ प्रदान किया।^{xxxi} केंद्र में गठबंधन सरकारों के युग (1996-2014) ने सहयोगी संघवाद को मजबूत किया, क्योंकि संसदीय बहुमत के लिए क्षेत्रीय दल अपरिहार्य हो गए, जिसने राज्यों को राष्ट्रीय नीति पर वास्तविक वीटो शक्ति प्रदान कर दी और संघ को राज्यों की बात सुनने के लिए बाध्य बनाया।^{xxxii} 2014 में तेलंगाना राज्य की स्थापना और उससे पूर्व 14वें वित्त आयोग द्वारा विभाज्य निधि का 42% राज्यों को ऐतिहासिक हस्तांतरण, इस राजनीतिक मान्यता का संकेत था कि सहयोगी वैधता के लिए पर्याप्त राजकोषीय स्वायत्तता आवश्यक है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में वर्तमान चरण प्रतिस्पर्धी सहयोगी संघवाद के एक विशिष्ट स्वरूप को संस्थागत बनाने का सचेत प्रयास दर्शाता है।^{xxxiii} 2015 में योजना आयोग का स्थान नीति आयोग द्वारा लिया जाना प्रतीकात्मक और क्रियात्मक परिवर्तन था। नीति आयोग के संस्थापक दस्तावेज कहते हैं कि यह राज्यों के साथ 'सहयोगी संघवाद' को बढ़ावा देना चाहता है और स्वास्थ्य, शिक्षा, जल-प्रबंधन और आकांक्षी जिलों में परिणाम-आधारित रैंकिंग के माध्यम से 'प्रतिस्पर्धी संघवाद' को प्रोत्साहित करना चाहता है। राज्यों की स्थिति या प्रदर्शन के विभिन्न सूचकांक सार्वजनिक रूप से प्रसारित होते हैं, जो राज्यों पर प्रदर्शन सुधारने का दबाव डालती है।^{xxxiv} साथ ही, संघ सरकार

ने केंद्र प्रायोजित योजनाओं, बद्ध अनुदानों और अनुच्छेद 293(3) के राजकोषीय नियंत्रण का उपयोग एक ऐसे सहयोगी अनुशासन को लागू करने के लिए किया है, जो राज्य के सुधार-प्रदर्शन की तीव्रता पर आधारित है। कोविड-19 महामारी के दौरान 'सुधार-आधारित उधारी' इसका प्रतिमानात्मक उदाहरण है। नीति आयोग की शासी परिषद्, जिसमें सभी मुख्यमंत्री शामिल हैं, शीर्ष सहयोगी मंच है^{xxxv}, तथापि इसके नीतिगत दस्तावेज प्रतिस्पर्धी रैंकिंग को सहयोगी प्रगति का अभिन्न अंग बताते हैं। इस दोहरे उपाय ने ऊर्ध्वाधर प्रतिस्पर्धा (राज्यों द्वारा केंद्र की स्वीकृति और कोष के लिए प्रतिस्पर्धा) और क्षैतिज प्रतिस्पर्धा (राज्यों द्वारा पड़ोसियों के सापेक्ष स्वयं का मानकीकरण) को तीव्र किया है और यह सब एक सहयोगी विमर्शात्मक ढाँचे के भीतर हुआ है, जो इस बात पर जोर देता है कि यह प्रतिस्पर्धा साझा राष्ट्रीय भलाई के लिए है।

सहयोग और प्रतिस्पर्धा का संयोजन : आलोचनात्मक संश्लेषण

सहयोग और प्रतिस्पर्धा का यह संयोजन भारत की असममित विविधता और संवैधानिक संरचना की एकात्मक क्षमता से पैदा हुई एक अनिवार्यता है। भारतीय संदर्भ में, एक तरफ, शुद्ध सहयोगी संघवाद केंद्रीकृत नियंत्रण का लगभग पर्याय रहा है। यह स्थानीय ज्ञान और उत्तरदायित्व उत्पन्न करने में भी असफल रहा है। दूसरी तरफ, शुद्ध प्रतिस्पर्धी संघवाद गंभीर असमानता पैदा कर सकता है, पड़ोसी राज्य को दरिद्र करने वाली राजकोषीय नीतियाँ तैयार कर सकता है और पहले से सुविधा-संपन्न राज्यों को पुरस्कृत करके संघ की क्षेत्रीय अखंडता को खतरे में डाल सकता है।^{xxxvi} भारतीय समाधान एक द्वैत है, जिसमें सहयोगी संस्थाएँ (वित्त आयोग, जीएसटी परिषद्, अंतर-राज्य परिषद्) पुनर्वितरण और साझा बाजार प्रदान करती हैं, जबकि प्रतिस्पर्धी गतिशीलता नीतिगत नवाचार, निवेश और राज्य क्षमता निर्माण को संचालित करती है। दोनों इसलिए आवश्यक हैं क्योंकि भारत के 'राज्यों के संघ' का मूल तर्क ही एक साथ अभिकेंद्री एकजुटता और अपकेंद्री क्रियाशीलता की मांग करता है।^{xxxvii}

ऊर्ध्वाधर सहयोग संवैधानिक रूप से अधिदेशित संस्थाओं (वित्त आयोग, जीएसटी परिषद्, नीति आयोग शासी परिषद्) और कार्यपालक तंत्रों (केंद्र प्रायोजित योजनाएँ, समझौता-ज्ञापन ढाँचे) के माध्यम से संचालित होता है। ऊर्ध्वाधर प्रतिस्पर्धा वित्त आयोग के प्रदर्शन-आधारित अनुदानों, नीति आयोग के सूचकांकों और अनुच्छेद 282 के अधीन सुधारोन्मुख राज्यों को विवेकाधीन अनुदान आवंटित करने की संघ की क्षमता में निहित है। क्षैतिज सहयोग आंचलिक परिषदों, अनुच्छेद 252 के तहत अंतर्राज्यीय समझौतों और जीएसटी परिषद् के भीतर राज्यों के सामूहिक मोलभाव में निहित है। क्षैतिज प्रतिस्पर्धा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की दौड़, सफल कल्याणकारी योजनाओं के प्रसार और नीति आयोग के समग्र सूचकांकों द्वारा आंतरिक मानकीकरण में स्पष्ट दिखाई देती है। ये संरचनाएँ पुनरावर्ती हैं। ऊर्ध्वाधर सहयोगी हस्तांतरण (वैधानिक हस्तांतरण) राज्यों को प्रतिस्पर्धा करने की राजकोषीय क्षमता प्रदान करते हैं, जबकि प्रतिस्पर्धी क्षेत्रीय प्रदर्शन ऊर्ध्वाधर सहयोगी मंचों के भीतर राज्य की मोलभाव की स्थिति को मजबूत करता है।^{xxxviii}

भारतीय संघवाद इसलिए अद्वितीय है क्योंकि वह संवैधानिक रूप से संप्रभुता को केंद्रीकृत करते हुए भी राजनीतिक और न्यायिक रूप से राज्य के प्रतिवाद के लिए स्थान सुनिश्चित करता है।^{xxxix} राजनीतिक प्रणाली ने एक बहुदलीय गठबंधन तर्क विकसित किया है, जिसमें क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय शासन के लिए अपरिहार्य हैं।^{xl} जो क्षैतिज सहयोग को विधायी अनिवार्यता और क्षैतिज प्रतिस्पर्धा को चुनावी प्रेरणा बनाता है। न्यायपालिका ने मूल ढाँचे के सिद्धांत को संघीय ढाल के रूप में गढ़ा है, जो भारत को उन संघों से विशिष्ट बनाता है, जिनमें मजबूत द्वैत संप्रभुता तो है, लेकिन केंद्रीय अतिक्रमण के विरुद्ध न्यायिक संरक्षण कमजोर है।^{xli} आर्थिक रूप से, भारतीय मॉडल ने 'प्रतिस्पर्धी क्षेत्रीय विकास' का एक विशिष्ट रूप पैदा किया है, जिसमें गतिशील राज्य अपनी प्रतिस्पर्धी बढ़त को मजबूत करने के लिए अपने सहयोगी अधिकारों (जैसे जीएसटी मुआवजा) का लाभ उठाते हैं, जबकि पिछड़े राज्य केंद्रीय संसाधन प्राप्त करने के लिए सहयोगी माँगों (विशेष श्रेणी का दर्जा माँग) का प्रयोग करते हैं।^{xlii} इस दोहरी गतिशीलता ने भारत को विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती प्रमुख अर्थव्यवस्था में परिवर्तित कर दिया है, साथ ही, चाहे अपूर्ण रूप से ही सही, लेकिन क्षेत्रीय पुनर्वितरण के प्रति संस्थागत प्रतिबद्धता भी बनाए रखी है।

सहयोग और प्रतिस्पर्धा का प्रतिच्छेदन सर्वाधिक मूर्त रूप से प्रदर्शन-आधारित राजकोषीय हस्तांतरण में देखा जाता है। यह एक साथ राष्ट्रीय संसाधनों के पुनर्वितरण का सहयोगी कार्य और राज्यों को सुशासन के लिए पुरस्कृत करने वाली प्रतिस्पर्धी प्रोत्साहन संरचना है। नियोजन नीति में, नीति आयोग का आकांक्षी जिला कार्यक्रम केंद्रीय मार्गदर्शन और अतिरिक्त संसाधन आवंटन का सहयोगी ढाँचा तैयार करता है, साथ ही पारदर्शी रैंकिंग प्रकाशित करता है, जो

जिला-स्तरीय प्रतिस्पर्धा को प्रेरित करती है। मौद्रिक नीति में, जहाँ भारतीय रिज़र्व बैंक की स्वायत्तता संघ का विषय है, अनुच्छेद 293(3) के अधीन लगाई गई उधारी सीमाएँ एक सहयोगी-प्रतिस्पर्धी वातावरण निर्मित करती हैं। राज्य साख-योग्यता के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, परन्तु उन्हें सहयोगपूर्वक राजकोषीय अनुशासन स्वीकार करना होता है।^{xliii} प्रशासनिक रूप से, अखिल भारतीय सेवाएँ (भा.प्र.से., भा.पु.से.) ऊर्ध्वाधर सहयोग के उदाहरण हैं^{xliiv}, फिर भी राज्य काडर की बढ़ती माँग प्रतिस्पर्धी गतिशीलता को प्रतिबिम्बित करती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः भारतीय संघवाद में सहयोग और प्रतिस्पर्धा दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं, क्योंकि बिना प्रतिस्पर्धा के सहयोग केंद्रीकृत निरंकुशता लाता है और बिना सहयोग के प्रतिस्पर्धा राष्ट्रीय व्यवस्था को खंडित कर सकती है। भारतीय संघवाद कोई स्थिर या जड़ संवैधानिक समझौता नहीं है, बल्कि समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलने वाली एक निरंतर अनुकूलनीय राजनीतिक तकनीक है। देश की अनूठी व्यवस्था में सहयोगी संस्थाएँ (जैसे वित्त आयोग, जीएसटी परिषद) पुनर्वितरण और साझा बाजार प्रदान करती हैं, जबकि प्रतिस्पर्धी गतिशीलता नीतिगत नवाचार और निवेश को बढ़ावा देती है। संविधान सभा की सोची-समझी अस्पष्टता और डॉ. अंबेडकर का दृष्टिकोण यह सिद्ध करता है कि भारतीय ढांचा सामान्य समय में संघीय और आपातकाल में एकात्मक रूप ले सकता है। जहाँ वैश्विक स्तर पर कई संघ लोकलुभावन सेंकेंद्रीयता या जातीय विखंडन का तनाव झेल रहे हैं, वहीं भारत एकता और क्षेत्रीय स्वायत्तता के विरोधाभासों को एक साथ बांधकर रखने वाला एक जीवंत मॉडल बना हुआ है।

भारतीय संघवाद कोई स्थिर संवैधानिक समझौता नहीं, अपितु एक सतत परिवर्तनीय प्रक्रिया है। इसकी विशिष्टता सहयोग और प्रतिस्पर्धा के बीच आभासी चयन को अस्वीकार करने में निहित है। इसके स्थान पर यह एक ऐसा राजनीतिक पारिस्थितिकी तंत्र निर्मित करता है, जिसमें सहयोगी संस्थाएँ प्रतिस्पर्धी राजनीति के झटके को अवशोषित करती हैं और प्रतिस्पर्धी नवाचार आम सहमति को वितरण के गतिरोध में बदलने से रोकता है। संविधान सभा की सोची-समझी अस्पष्टता से लेकर नीति आयोग के स्पष्ट द्वैतवाद तक की ऐतिहासिक यात्रा यह प्रदर्शित करती है कि भारतीय गणराज्य ने अपनी संवैधानिक पहचान को बदले बिना बार-बार अपने संघीय संतुलन पर पुनर्विचार किया है। ऐसे वैश्विक परिवेश में जहाँ ज्यादातर संघ लोकलुभावन केंद्रीकरण और जातीय विखंडन के दबाव में तनाव झेल रहे हैं, भारत का एकता और स्वायत्तता के विरोधाभासी आवेगों को एक साथ बाँधे रखने का प्रयोग, लोकतांत्रिक शासन की एक जीवंत परियोजना बना हुआ है।

संदर्भ

i एलेक्जेंडर हैमिल्टन, जेम्स मैडिसन, *जॉन जे. द फेडरलिस्ट पेपर्स*, "नंबर 39: मैडिसन" न्यूयॉर्क: न्यू अमेरिकन लाइब्रेरी (1961), पृष्ठ 240-246

ii के. सी. व्हेयर. *फेडरल गवर्नमेंट*, चौथा संस्करण, न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (1964), पृष्ठ 1-14

iii व्हेयर को पारंपरिक संघवाद पर 20वीं सदी का सर्वप्रमुख विचारक माना जाता है। उन्होंने संघवाद को व्याख्यायित करते हुए लिखा है, "संघीय सिद्धांत से मेरा तात्पर्य शक्तियों को बांटने के उस तरीके से है, जिसमें सामान्य और क्षेत्रीय सत्ता, अपने-अपने क्षेत्र में, समान स्तर की और स्वतंत्र हों।"

iv संविधान सभा वाद-विवाद, खंड VII, 4 नवंबर 1948

<https://elibrary.sansad.in/server/api/core/bitstreams/bcd07f63-c4e0-4736-ba64-bc09b28e1c78/view>

v लॉरेंस साएज़, फ़ेडरलिज्म विदाउट ए सेंटर: द इम्पैक्ट ऑफ़ पॉलिटिकल एंड इकोनॉमिक रिफ़ॉर्म ऑन इंडिया'ज फ़ेडरल सिस्टम, नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस (2002), पृष्ठ 21-39

- vi बलवीर अरोड़ा, 'फेडरल गवर्नेस फॉर इंडिया' ज मल्टी-टियर्ड पॉलिटी: सम ट्रांसफॉर्मेटिव ऑप्शन', में पार्थसारथी शोम द्वारा सम्पादित ग्रंथ 'फिस्कल पॉलिसी, पब्लिक पॉलिसी एंड गवर्नेस' नई दिल्ली: नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस (1996) पृष्ठ 301-309
- vii लुईस टिलिन, इंडियन फेडरलिज्म, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2019) अध्याय 4 'फेडरलिज्म एंड द इकोनॉमी'
- viii एम. गोविंदा राव और निर्विकार सिंह, द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ फेडरलिज्म इन इंडिया, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2005) पृष्ठ 260-265
- ix लॉयड आई. रुडोल्फ और सुजैन होबर रुडोल्फ, 'इन परसूट ऑफ लक्ष्मी: द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ द इंडियन स्टेट', शिकागो: द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस (1987) पृष्ठ 1-18
- x के. सी. व्हेयर, फेडरल गवर्नमेंट, चौथा संस्करण, न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (1964) पृष्ठ 1-14
- xi अल्फ्रेड स्टेपन, जुआन जे. लिन्ज़, और योगेंद्र यादव, 'क्राफ्टिंग स्टेट-नेशनस: इंडिया एंड अदर मल्टीनेशनल डेमोक्रेसीज़', बाल्टीमोर: द जॉन हॉपकिंस यूनिवर्सिटी प्रेस (2011) पृष्ठ 44-48
- xii ग्रैनविल ऑस्टिन, द इंडियन कॉन्स्टिट्यूशन: कॉर्नरस्टोन ऑफ ए नेशन, ऑक्सफोर्ड: क्लेरेडन प्रेस (1966) पृष्ठ 186-216
- xiii जवाहरलाल नेहरू सेलेक्टेड वर्क्स, खंड 3, द्वितीय श्रृंखला, नई दिल्ली: जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल फंड (1985), पृष्ठ 53
- xiv माधव खोसला, इंडियाज़ फाउंडिंग मोमेंट: द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ ए मोस्ट सरप्राइज़िंग डेमोक्रेसी, कैंब्रिज: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2020) पृष्ठ 72-109
- xv "The Draft Constitution can be both unitary as well as federal according to the requirements of time and circumstances. In normal times, it is framed to work as a federal system. But in times of war it is so designed as to make it work as though it was a unitary system."
- xvi ग्रैनविल ऑस्टिन का मन्तव्य था कि समवर्ती सूची परस्पर संवाद और सहयोग का अवसर प्रदान करती है। इससे केंद्र सरकार राज्यों की स्वायत्तता को पूरी तरह खत्म किए बिना नीतियों में एकरूपता ला सकती है।
- xvii एम. गोविंदा राव और निर्विकार सिंह, द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ फेडरलिज्म इन इंडिया, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2005) अध्याय 6: "असाइनमेंट्स ऑफ टैक्सेज एंड एक्स्पेंडिचर्स"
- xviii वाई.वी. रेड्डी और जी.आर. रेड्डी, इंडियन फिस्कल फेडरलिज्म, "इवोल्यूशन ऑफ फिस्कल फेडरलिज्म" द्वितीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2025) पृष्ठ 19-42
- xix बलवीर अरोड़ा, 'फेडरल गवर्नेस फॉर इंडिया' ज मल्टी-टियर्ड पॉलिटी: सम ट्रांसफॉर्मेटिव ऑप्शन', में पार्थसारथी शोम द्वारा सम्पादित ग्रंथ 'फिस्कल पॉलिसी, पब्लिक पॉलिसी एंड गवर्नेस' नई दिल्ली: नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस (1996) पृष्ठ 301-309
- xx ग्रैनविल ऑस्टिन, वर्किंग ए डेमोक्रेटिक कॉन्स्टिट्यूशन: ए हिस्ट्री ऑफ द इंडियन एक्सपीरियंस, पचवां संस्करण, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2001) पृष्ठ 13-37
- xxi वाई.वी. रेड्डी और जी.आर. रेड्डी, इंडियन फिस्कल फेडरलिज्म, द्वितीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2025) पृष्ठ 189-200
- xxii <https://api.sci.gov.in/jonew/judis/11570.pdf>
- xxiii सुजीत चौधरी, माधव खोसला और प्रताप भानु मेहता (संपादक), द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ द इंडियन कॉन्स्टिट्यूशन, ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2016) पृष्ठ 451-465

xxiv प्रख्यात विधिवेत्ता अरविंद दातार ने ऑक्सफोर्ड हैंडबुक में लिखते हुए, व्यापार और वाणिज्य के संबंध में भाग XIII (अनुच्छेद 301) की सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्या पर चर्चा की है। वे बताते हैं कि व्यक्तिगत राज्यों द्वारा लगाए गए भेदभावपूर्ण प्रवेश करों को अमान्य करने में न्यायपालिका की भूमिका "राष्ट्र की आर्थिक एकता को संरक्षित करने" के लिए महत्वपूर्ण है।

xxv लॉरेंस साएज़, फ़ेडरलिज़्म विदाउट ए सेंटर: द इम्पैक्ट ऑफ़ पॉलिटिकल एंड इकोनॉमिक रिफ़ॉर्म ऑन इंडिया'ज़ फ़ेडरल सिस्टम, नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स (2002) पृष्ठ 215-228

xxvi लुईस टिलिन, इंडियन फ़ेडरलिज़्म, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2019) अध्याय 3 ("गवर्निंग इंडिया: सेंटर-स्टेट रिलेशंस")

xxvii एम.पी. सिंह और रेखा सक्सेना, इंडियन पॉलिटिक्स: कॉन्स्टिट्यूशनल फ़ाउंडेशन्स एंड इंस्टीट्यूशनल फंक्शनिंग. तीसरा संस्करण, नई दिल्ली: लर्निंग (2021) अध्याय 3, "टुवर्ड्स ग्रेटर फ़ेडरलाइज़ेशन", पृष्ठ 182-186

xxviii फ़्रांसिन आर. फ्रैंकल, इंडियाज़ पॉलिटिकल इकोनॉमी, 1947-2004: द ग्रेजुअल रेवोल्यूशन, न्यू जर्सी: प्रीनकेटों यूनिवर्सिटी प्रेस (1978) "इंट्रोडक्शन: द पैराडॉक्स ऑफ़ अकोमोडेटिव पॉलिटिक्स एंड रेडिकल सोशल चेंज", पृष्ठ 3-27

xxix ग्रैनविल ऑस्टिन, वर्किंग ए डेमोक्रेटिक कॉन्स्टिट्यूशन: ए हिस्ट्री ऑफ़ द इंडियन एक्सपीरियंस, "टर्मिनोलॉजी एंड इट्स पेरिल" पृष्ठ 568-570

xxx पॉल आर. ब्रास, द पॉलिटिक्स ऑफ़ इंडिया सिंस इंडिपेंडेंस, "स्टेट एंड लोकल पॉलिटिक्स", दूसरा संस्करण, केंब्रिज: यूनिवर्सिटी ऑफ़ केंब्रिज (1996) पृष्ठ 116-150

xxxi असीमा सिन्हा, द रीजनल रूट्स ऑफ़ डेवलपमेंटल पॉलिटिक्स इन इंडिया: ए डिवाइडेड लेविथान, बलुमीगटन: इंडिया'ना यूनिवर्सिटी प्रेस (2005) अध्याय 3 डिसएग्निफ़ेटिंग द सेंट्रल स्टेट

xxxii डॉ. वाई.वी. रेड्डी और जी.आर. रेड्डी, इंडियन फ़िस्कल फ़ेडरलिज़्म का अंतिम अध्याय "द सिक्सटिन्थ फ़ाइनेंस कमीशन: न्यू चैलेंजेज"

xxxiii रेखा सक्सेना का अध्याय "द चेंजिंग नेचर ऑफ़ फ़ेडरलिज़्म इन इंडिया" में सुमित गांगुली और ई. श्रीधरण द्वारा सम्पादित ग्रंथ 'द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ़ इंडियन पॉलिटिक्स' ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2024)

xxxiv अरविंद पनगढ़िया, इंडिया अनलिमिटेड: रीक्लेमिंग द लॉस्ट ग्लोरी, न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2020)

xxxv एम.पी. सिंह और रेखा सक्सेना, इंडियन पॉलिटिक्स: कॉन्स्टिट्यूशनल फ़ाउंडेशन्स एंड इंस्टीट्यूशनल फंक्शनिंग (तीसरा संस्करण) का अध्याय 3, "टुवर्ड्स ग्रेटर फ़ेडरलाइज़ेशन", पृष्ठ 182-186

xxxvi बलवीर अरोड़ा और के. के. कैलाश का "बियॉन्ड क्वासी फ़ेडरलिज़्म: चेंज एंड कंटेन्यूटी इन इंडियन फ़ेडरलिज़्म" शीर्षक आलेख <https://journals.sagepub.com/doi/abs/10.1177/2321023018797560>

xxxvii एम. गोविंदा राव और निर्विकार सिंह, द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ़ फ़ेडरलिज़्म इन इंडिया, का चतुर्थ अध्याय "बार्गेनिंग, कंट्रोल, एंड कमिटमेंट"

xxxviii एम. गोविंदा राव और तापस कुमार सेन, "फ़ेडरलिज़्म एंड फ़िस्कल रिफ़ॉर्म इन इंडिया", नई दिल्ली: नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ पब्लिक फ़ाइनेंस (2011) वर्किंग पेपर नं. 284

xxxix ग्रैनविल ऑस्टिन, द इंडियन कॉन्स्टिट्यूशन: कॉर्नरस्टोन ऑफ़ ए नेशन, पृष्ठ 186-216

xl एम.पी. सिंह और रेखा सक्सेना, फ़ेडरलाइज़िंग इंडिया इन द एज ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशन, नई दिल्ली: प्राइमस बुक्स (2013) का अध्याय 4, "टुवर्ड्स ग्रेटर फ़ेडरलाइज़ेशन", पृष्ठ 182-186

xli सुधीर कृष्णास्वामी, डेमोक्रेसी एंड कॉन्स्टिट्यूशनलिज़्म इन इंडिया, में "द बेसिक स्ट्रक्चर डॉक्ट्रिन इन इंडियन कॉन्स्टिट्यूशनल एडजुडिकेशन" नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2009) परिचयात्मक अध्याय

xlii लुईस टिलिन की पुस्तक 'इंडियन फ़ेडरलिज़्म' का अध्याय 4 'फ़ेडरलिज़्म एंड द इकोनॉमी'

xliii एम. गोविंदा राव और निर्विकार सिंह, 'द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ़ सेंटर-स्टेट फ़िस्कल ट्रांसफ़र्स इन इंडिया', वर्किंग पेपर नं. 107, स्टेनफ़ोर्ड सेंटर फ़ॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट

https://kingcenter.stanford.edu/sites/g/files/sbiybj16611/files/media/file/107wp_0.pdf

xliv एम.पी. सिंह और रेखा सक्सेना, इंडियन पॉलिटिक्स: कॉन्स्टिट्यूशनल फाउंडेशन्स एंड इंस्टीट्यूशनल फंक्शनिंग (तीसरा संस्करण) नई दिल्ली: प्राइमस बुक्स (2013) अध्याय 10, "ब्यूरोक्रेसी: द परमानेंट गवर्नमेंट?", पृष्ठ 253–275

